बच्चन की अन्य प्रकाशित रचनाएँ

१—निशा-निमंत्रण

एक सौ गीतों का संग्रह

२—मधुकलश

कविताओं का संग्रह

३—मधुबाला

कविताओं का संग्रह

४—मधुशाला

रुबाइयों का संग्रह

५—खैयाम की मधुशाला

रुबाइयात उमर ख़ैयाम का पद्यानुवाद

इनके विषय में विशेष जानकारी के लिए पुस्तक के अंत में देखिए।

तेरा हार

बच्चन

दूसरा संस्करण

सुषमा-निकुंज
इलाहाबाद

प्रकाशक
सुषमा निकुंज
प्रयाग

पहला संस्करण—सितंबर १९३२
दूसरा संस्करण—सितंबर १९३९

मूल्य १)

मुद्रक
गौरीशंकर दीक्षित, दीक्षित प्रेस
इलाहाबाद

विज्ञापन

हमें बच्चन की प्रथम काव्य कृति 'तेरा हार' का द्वितीय संस्करण प्रकाशित करते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है। इसका प्रथम संस्करण सन् १९३२ में रामनारायण लाल, पब्लिशर और बुकसेलर, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित हुआ था। सुषमा निकुज से यह पुस्तक पहली बार प्रकाशित हो रही है।

'तेरा हार' के प्रकाशित होने के पूर्व बच्चन की केवल इनी-गिनी कविताएँ हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थी। फिर भी इस नवीन कवि का हिंदी पत्र पत्रिकाओं ने अच्छा स्वागत किया। मासिक विश्वमित्र ने लिखा था 'इसके रचयिता महोदय का नाम यद्यपि हम हिंदी में प्रथम बार देख रहे हैं तथापि कविताएँ पढ़ने से मालूम होता है कि वे इस कला में सिद्धहस्त हैं। कविताएँ सुदर और सरस हैं और भाव भी यथेष्ठ परिपक्व हैं।' हंस ने लिखा था, 'कवि अपने आतरिक भावों को व्यक्त करने में सफल हुआ है। भावों को समझने मे कठिनाई नहीं होती। जटिल कल्पना तथा शब्द जाल से लेखक दूर है। कविताएँ पढने से मालूम होता है

कि लेखक सचमुच कवि हृदय है और होनहार है। इसी प्रकार कर्मवीर, प्रताप चाँद वीणा, सुधा आदि पत्रिकाओं ने लिखा था कि कविता प्रेमियों को बच्चन की इस कृति का आदर करना चाहिए और एक बार अवश्य देखना चाहिए। परंतु पत्र पत्रिकाओं में इतनी प्रशंसात्मक समालोचना होने पर भी पुस्तक बहुत कम बिकी। इसकी विशेष माँग 'मधुशाला' के प्रकाशित होने के पश्चात हुई। लोगों को आश्चर्य हुआ कि 'तेरा हार' का लेखक मधुशाला' के गायक के रूप में कैसे अवतरित हो गया। उन्हें क्या पता था कि तेरा हार के पश्चात और मधुशाला के पूर्व कवि 'तेरा हार' जैसे चार पाँच संग्रह तैयार कर चुका है। ये संग्रह आज भी अप्रकाशित हैं। यही कारण है कि जब 'तेरा हार' का पाठक मधुशाला' पढ़ना आरंभ करता है तो उसे मालूम होता है कि जैसे उसे एक बहुत बड़ी खाई उछलकर पार करनी पड़ी है।

तेरा हार लगभग दो ढाई वर्ष हुए समाप्त हो गया था। पर हम बच्चन की नवीन कृतियों के प्रकाशन तथा विख्यात कृतियों के नवीन संस्करण उपस्थित करने में इतने व्यस्त रहे कि उनकी यह प्रथम कृति पीछे पड़ गई। कुछ कारण और भी था। बच्चन चाहते थे कि इसका दूसरा संस्करण न किया जाय। इसके बजाय जो रचनाएँ अभी तक अप्रकाशित हैं उनको प्रकाशित किया जाय कि जिसमें कम से कम एक बार तो क्रमानुसार उनकी सब रचनाएँ

उनकी कविता के पाठकों के सामने आ जायॅ। परंतु दो वर्ष तक पुस्तक अप्राप्य होने पर भी कविता प्रेमियों का अनुरोध 'तेरा हार' के लिए बराबर बना रहा। हमारा ध्यान है कि इसके प्रथम संस्करण की समाप्ति पर ही यदि हमने इसका दूसरा सस्करण निकाल दिया होता तो शायद अब तक वह भी समाप्त हो गया होता। बच्चन के नित नूतन कविता के पत्र-पुष्पों को देखकर उसके बीज को जानने और समझने की उत्सुकता स्वाभाविक ही है। हम उन लोगों के निकट क्षमा प्रार्थी हैं जो अब तक इसके लिए निराश होते रहे हैं।

इस सस्करण को पहले संस्करण का पुनर्मुद्रण ही समझना चाहिए। यद्यपि पुस्तक के आकार-प्रकार में वहुत कुछ परिवर्तन किया गया है। पुस्तक युद्ध काल मे प्रकाशित हो रही है जब कि काग़ज़,छपाई आदि सभी का दाम बढ गया है। हम पुस्तक का मूल्य बढ़ाना नहीं चाहते थे, इस कारण हम इसका गेट अप उतना सुदर न बना सके जितना कि हमारी इच्छा थी।

हमारे पाठकों को सुनकर हर्ष होगा कि बच्चन की नवीन तम रचना 'एकात सगीत' प्रेस में चली गई है और शीघ्र ही प्रकाशित होगी। हम बच्चन की पिछली रचनाओं को भी शीघ्र प्रकाशित करने की आयोजना कर रहे हैं।

प्रकाशक

मंगलारंभ

प्रियतम, मैंने बनने को तेरी सुंदर ग्रीवा का हार
ललित बहिन-सी कलियाँ छोड़ीं,
भाई-से पल्लव सुकुमार,
साथ-खेलते फूल, खेलती-
साथ तितलियाँ विविध प्रकार।
गोद-खेलाते हुए पिता-से
पौधे का मृदु स्नेह अपार,
माता-सी प्यारी क्यारी का
सहज सलोना. सरल दुलार,
बाल्य सुलभ-चांचल्य चपलता
छोड़ी, बँधी नियम के तार,
छोड़ा निज क्रीड़ा-शुभस्थली
शुभ्र वाटिका का घर-द्वार;
प्रियतम, बतला दे आकर्षक है क्यों इतना तेरा प्यार ?

—जीवन सहचरी

सम्बोधन

१— बुलाऊँ क्यों मैं तुम्हें पुकार!
जान ले क्या सारा संसार!

तुम्हें इन कलियों का मधु-वास
खींच लाएगा मेरे पास।

२—रहें हम-तुम अब केवल साथ
निन्दा दूँ हार तुम्हें चुपचाप,

न पाए हम दोनों का प्यार
कभी शंकालु विश्व में व्याप। ”

मेरी सम्राज्ञ कविते!

तुमे वह दिन तो याद ही होगा जब तूने स्वयं अपने लिए यह विशेषण ले लिया था। तूने मेरे हृदय की बात कह दी थी। मैं स्वयं तुझे अन्दर से यही मान रहा था पर डर भय से उसे बाहर न लाता था। तू यह कैसे जान गई! मालूम होता है तूने मेरे साथ विश्वास पात

किया । मैंने तुझे अपने हृदय-मंदिर में यह सोचकर ला रक्खा था कि तू वहाँ एक आदर्श प्रतिमा के समान बिना हिले-डुले बैठी रहेगी, पर मालूम होता है कि जब मैं भावनाओं के उन्माद में अपने हृदय की सुध-बुध भूल जाता हूँ तब तू अपने सिंहासन से उठकर मेरे हृदय की अन्य कोठरियों की तलाशी लेने लगती है।

और अब तू इतनी ढीठ हो गई है कि तेरी तृप्ति मेरे चढ़ाए फूलों से ही नहीं होती। तू अब मेरे हृदयोद्यान में बेखटके चली जाती है और वहाँ जितनी कलियाँ अपने योग्य समझती है मेरी ओर से अपने को समर्पित कर लेती है। पर देख, फिर भी मैं तेरी पूजा की ओर से निश्चित नहीं हूँ आज, जब तेरा 'जन्म-दिवस' है, मैं भी एक हार गूँथ कर तैयार हूँ, लेकिन, तुझे इसे समर्पण करने के लिए न मैं अनुनय-विनय करना चाहता हूँ और न तू ही इसे लेने में इन्कार-अदाज़ दिखलाना चाहेगी। वे तो तूने जब तेरे वे दिखलाने के दिन थे तब भी न दिखलाए, और मेरे दिल में यह अरमान रह ही गया कि एक दिन मैं हार ले कर तेरे

पीछे पीछे दौड़ता फिरता और तू 'नहीं' 'नहीं' की झड़ी लगाती हुई मुझसे दूर-दूर भागती।

इसके प्रतिकूल, मुझे तो अपना हार गूँथते समय सदा इस बात का डर लगा रहता था कि कहीं तुझे इसका पता न लग जाय और यह अधगूँथा हार इस 'शुभ अवसर' के आने से पहले ही मेरे हाथों से छिन कर तेरे गले में न पहुँच जाय। कुछ याद है कितनी बार जब मैंने हार गूँथने के लिए कली उठाई, तू मेरे हाथों से उसे छीन कर चपत हो गई? और अब यह पूरा बन गया है और तू इसे ले ही लेगी। इसी से मैंने इस हार का नाम ही 'तेरा हार' रक्खा है और इसका आरंभ 'समपर्य मे न करण स्वीकृत' से करने की धृष्टता की है। क्षमा करना।

इसकी कलियाँ मुझे अभी निर्जीव मालूम होती हैं। पर, मुझे पूरा विश्वास है कि तेरे सजीव स्पर्श से इनमें जीवन आएगा। जीवन ही क्यों—अमरता आएगी। मेरा हार उन अभागे फूलों का नहीं बना जिन्हें क्रूर काल दो ही घड़ी में मुरझा कर धमियों को

उसे उतार फेंकने के लिए विवश करता है। मेरे हार के फूलों का मुर्झाना तो तब आरम्भ होगा जब तू उसे अपने गले से उतार कर फेंक देगी, पर उसके पहले नहीं। क्या तू कभी ऐसा करेगी ?

अपना हार तुझे पहनाने के साथ ही तुझसे एक बात कह देना चाहता हूँ—मानेगी ? सुन चंचले ! मेरे इस हार को औरों को दिखाती न फिरना। इन कलियों की मधुर-स्मृति-मय सुगंध को समझने वाले केवल दो ही व्यक्ति हैं—एक तो, मेरी तू—मेरी कविता, और एक, तेरा मैं—तेरा कवि। 'तेरा कवि,' क्योंकि मैं समझता हूँ कि संसार में मुझे अपने को कवि कहलाने की योग्यता नहीं है। यदि मैं ऐसा दावा करूँगा तो वह मुझ पर हँसेगा। वह तो मुझे 'तेरा कवि' कहलाने पर भी हँसेगा। पर इस उपाधि को (और यह भी तो तेरी ही दी हुई है न ?) तो मैं उसके भय से नहीं छोड़ सकता। वह मुझ पर हँसे और खूब हँसे। मुझे इसका कोई दुःख नहीं है, क्योंकि मेरे सिर यह कोई नई बला नहीं। संसार हमेशा से ही मुझ पर हँसता आया है।

उससे पवल मैं इतना ही चाहता हूँ कि यदि वह कभी मुझ-तुझे साथ देख ले तो तेरे प्रति मेरे प्रम, अनुराग, भक्ति व अनोखे, निराले, अनन्य—संबंध, लगाव नाते (कोई शब्द मेरी भावनाओं को संतुष्ट ही नहीं करता!) को शंकित दृष्टि से न देखे—बस। आशीर्वाद और शुभ कामना की दो दो पंक्तियाँ और—और समाप्ति—मेरे अपराध तो मेरे समीप सदा क्षम्य हैं ही। अच्छा —

१—"तुम्हारी माला में सुकुमार,
सुशोभित हो यह मेरा हार,
खिल कलियों-सा मन सुकुमार
हमारा तुम्हें निहार निहार!"

तेरा कौन?
वही जो तेरा हूँ।

सूची

तेरा हार

स्वीकृत

(१)

घर से यह सोच उठी थी
उपहार उन्हें मैं दूँगी,
करके प्रसन्न मन उनका
उनके शुभ आशिष लूँगी।

(२)

पर जब उनकी वह प्रतिभा
नयनों से देखी जाकर,
तब छिपा लिया अँचल में
उपहार-हार सकुचा कर।

(३)

मैले कपड़ों के भीतर
वल्कल जिसने पहचाने,
वह हार छिपाया मेरा
रहता कब तक अनजाने ?

(४)

मैं लज्जित-मूक खड़ा था,
प्रभु ने मुस्करा बुलाया,
फिर खड़े सामने मेरे
होकर निज शीश झुकाया !

आशे !

(१)

भूल तब जाता दुःख अनत,
निराशा पतझड़ का हो अत
हृदय में छाता पुनः वसत,
दमक उठता मेरा मुख म्लान,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान ।

(२)

पथिक जो बैठा हिम्मत हार,
जिसे लगता था जीवन भार,
कमर कसता होता तैयार,
पुनः उठता करता प्रस्थान,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान ।

(३)

डूबते पा जाता आधार
सरस होता जीवन निस्सार,
सार-मय फिर होता ससार
सरल हो जाते काय महान,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान।

(४)

शक्ति का फिर होता सचार,
सूझ पड़ता फिर कुछ-कुछ पार
हाथ में फिर लेता पतवार
पुन लेता जीवन जल यान,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान।

नैराश्य

(१)

निशा व्यतीत हो चुकी कब की !
सूर्य-किरण कब फूटी !
चहल-पहल हो उठी जगत में,
नींद न तेरी टूटी !

(२)

उठा-उठाकर हार गई मैं,
आँख न तूने खोली,
क्या तेरे जीवन-अभिनय की
सारी लीला हो ली !

(३)

जीवन का तो चिन्ह यही है
सोकर फिर जग जाना,
क्या अनंत निद्रा में सोना
नहीं मृत्यु का आना!

(४)

तुझे न उठता देख मुझे है
बार-बार भ्रम होता—
क्या मैं कोई मृत शरीर को
समझ रही हूँ सोता!

कीर

(१)

"कीर ! तू क्यों बैठा मन मार,
शोक बनकर साकार,
शिथिल-तन मग्न-विचार ?
आकर तुझपर टूट पड़ा है किस चिंता का भार ?"

(२)

इसे सुन पक्षी पंख पसार,
तीलियों पर पर मार
हार बैठा लाचार,
पिंजड़े के तारों से निकली मानो यह झंकार—

(३)

आओ युवको, चलें सुनें क्या
माता हमसे कहती आज।
हाथ हमारे है रखना माँ
भारत के अचल की लाज।

बंदी

(१)

"पड़े बंदी क्यों कारागार ?

चले तुम कौन कुचाल ?

चुराया किसका माल ?

छीना क्या किसका जिसपर था तुम्हें नहीं अधिकार ?"

(२)

"न था मन में कोई कुविचार,

न थी दौलत की चाह,

न थी धन की परवाह,

था अपराध हमारा केवल किया देश को प्यार !

(२)

शीश पर मातृभूमि ऋण-भार,
उसे हूँ रहा उतार।
देशहित कारागार—
कारागार नहीं, वह तो है स्वतन्त्रता का द्वार !'

वंदी मित्र

(१)

जेल-कोठरी के मैं द्वार

वंदी ! तुझसे मिलने आया,

नतमस्तक मन में शर्माया,

मित्र ! मित्रता का मुझसे कुछ निभ न सका व्यवहार ।

(२)

कैसे आता तेरे साथ ?

देश-भक्ति करने का अवसर,

बड़े भाग्य से मिले मित्रवर !

मेरी क़िस्मत में वह कैसे लिखते विधि के हाथ !

(३)

मित्र ! तुम्हारे मंगल भाल

अंकित है स्वतंत्र नित रहना,

मेरे, बंदी-गृह दुख सहना,

"मैं स्वतंत्र ! तू बंदी ! कैसे ?"—तेरा ठीक सवाल।

(४)

मित्र ! नहीं क्या यह अविवाद ?

स्वतंत्र ही स्वतंत्रता खोता,

बंदी कभी न बंदी होता

अपने को बंदी कर सकते जो स्वतंत्र आज़ाद।

(५)

कम न देश का मुझको प्यार।

साथ तुम्हारा मैं भी देता,

अंग अंग यदि जकड़ न लेता

मेरा प्यारे मित्र ! जगत का काला कारागार।

कोयल

(१)

अहे! कोयल की पहली कूक!
अचानक उसका पड़ना बोल,
हृदय में मधु रस देना घोल,
श्रवणों का उत्सुक होना, बनना जिह्वा का मूक।

(२)

कूक? कोयल! या कोई मंत्र?
फूँक जो तू आमोद-प्रमोद,
भरेगी वसुंधरा की गोद,
काया-कल्प-क्रिया करने का ज्ञात तुझे क्या तंत्र?

(३)

बदल अब प्रकृति पुराना ठाट
करेगी नया-नया शृंगार,
सजाकर निज तन विविध प्रकार,
देखेगी ऋतुपति प्रियतम के शुभागमन की बाट।

(४)

करेगा आकर मंद समीर
बाल-पल्लव अधरों से बात
ढकेंगी तरुवर गण के गात,
नई पत्तियाँ पहना उनको हरी सुकोमल चीर।

(५)

बसंती, पीले, नीले, लाल,
बैंगनी आदि रंग के फूल,
फूलकर गुच्छ-गुच्छ में झूल,
झूमेंगे तरुवर शाखा में वायु-हिंडोले डाल।

मक्खियाँ कृपणा होंगी मग्न
माँग सुमनों से रस का दान,
सुना उनको निज गुन-गुन गान,
मधु-संचय करने में होंगी तन-मन से संलग्न।

(७)

नयन खोले सर कमल समान
वनी-वन का देखेंगे रूप—
युगुल जोड़ी की सुछवि अनूप;
उन कजों पर होंगे भ्रमरों के नर्तन गुंजान।

(८)

बहेगा सरिता में जल श्वेत,
समुज्ज्वल दर्पण के अनुरूप,
देखकर जिसमें अपना रूप,
पीत कुसुम की चादर ओढ़ेंगे सरसों के खेत।

(९)

कुसुम दल से पराग का छीन,
चुरा खिलती कलियों की गंध,
कराएगा उनका गँठबंध,
पवन पुरोहित गंध सुरभ से रज सुगंध से भीन।

(१०)

फिरँग पशु जोड़े ले संग,
संग अज शावक बाल-कुरंग,
फड़कते हैं जिनके प्रत्यंग,
पर्वत की चट्टानों पर कुदकेंगे भरे उमंग।

(११)

पक्षियों के सुन राग-कलाप—
प्राकृतिक नाद ग्राम, सुर, ताल,
शुक पड़ जाएँगे तत्काल,
गंधर्वों के वाद्य-यंत्र किन्नर के मधुर अलाप।

इंद्र अपना इंद्रासन त्याग,
अखाड़े अपने करके बंद,
परम उत्सुक-मन दौड़ अमंद,
खोलेगा सुनने को नंदन-द्वार भूमि का राग!

(१३)

करेगी मत्त मयूरी नृत्य
अन्य विहगों का सुनकर गान,
देख यह सुरपति लेगा मान,
परियों के नर्तन हैं केवल आडंबर के कृत्य!

(१४)

अहे! फिर 'कुऊ' पूर्ण-आवेश!
सुनाकर तू ऋतुपति-संदेश,
लगी दिखलाने उसका वेश,
क्षणिक कल्पने! मुझे घुमाए तूने कितने देश!

(१५)

कोकिले ! पर यह तेरा राग
हमारे नग्न बुभुक्षित देश
के लिए लाया क्या संदेश !
साथ प्रकृति के बदलेगा इस दीन देश का भाग !

मध्याह्न

(१)

सुना था मैंने प्रातःकाल,
हुआ जब रजनी का अवसान,
लगे जब होने उडगण म्लान,
हिल-मिल पक्षी गण का गाना बैठ वृक्ष की डाल—

शारिका, श्यामा, तोते, लाल
आदि के कोमल विविध प्रकार
स्वरों का मधुर चढाव-उतार,
सब के ऊपर कुहुक-कुहुक कोयल का देना ताल।

घाम न होता, रात न आती,
जहाँ सदा ही सन्ध्या छाती,
भूख जहाँ पर नहीं सताती,
प्यास नहीं है लगने पाती,
जहाँ न मृत्यु-जन्म का नाम,
जहाँ नहीं जीवन-संग्राम,
जहाँ न कोई करता द्वेष
जहाँ नहीं भय का लवलेश
अगणित खग सवदा चहकते,
कंठ नहीं पर उनके थकते,
उत्कृति स्वर से है गाना जहाँ काम बस एक!

(५)

सुनू न फिर मैं क्यों कलरोर!
आह! भेद मैंने अब पाया—
बहरा अपना कान बनाया
भय अशांति भय मचा-मचाकर हमने ही तो शोर!

चुंबन

(१)

रे छोटे विहग सुकुमार!

तेरे कोमल चंचु-अधर से

निकल रहे स्नेहाप्लुत स्वर से

लगता, कोई करे किसी को निर्भय चुम्बन-प्यार!

(२)

किसको करते चुम्बन-प्यार!

क्या मानव आँखों से देखी

गई न बुद्धि-चक्षु अवरेखी

उसको, ऊषा काल बहे जो शीतल-मंद बयार!

(३)

या सुमनों में शिशु सुकुमार,
जो सुगंध का अब तक सोया,
रजनी के स्वप्नों में खोया,
उसे जगाते धीमे धीमे कर के चुंबन प्यार ?

(४)

या तुम शशि-किरणों के तार
ले जा हाथ उन्हें चुंबन कर
और सितारों का प्रकाश हर
चूम-चूम सस्नेह विदा करते हो अंतिम बार ?

(५)

या तुम बाल सूर्य के हाथ,
स्वर्ण-रंग में गए रँगाए,
गए तुम्हारी ओर बढ़ाए,
करते हो आभूषित अपने रजत-चुंबनों साथ ?

(६)

या तुम उस चुंबन का, तात !

पाठ याद करते उठ भोर,

जिसे लिटा अंचल-पर-छोर

अपने तुमको, मातृ-विहगिनि ने सिखलाया रात !

(७)

या तुम वह चुंबन प्रति भोर

उठकर याद किया करते हो,

(मुझे बताते क्यों डरते हो ?)

जिससे तुम्हें किसी ने भेजा जीवन के इस ओर !

(८)

तब की तो है मुझे न याद,

पर अतीत जीवन के चुंबन

कितने चमका करें हृद्गगन,

जिनकी मूकस्मृति मेरे मन भरती मधुर विषाद !

(१)

याद न करना के छवि-छंद

हाँ, मानस गगन घूमता
प्रति भुवन का द्रुम चूमता,
क्या बना मैं तुम-सा रहता एक विहग स्वच्छंद !

मधुकर

(१)

उमड़ - घुमड़ काले - काले
बादल का नभ में घिर आना,
रिम-झिम रिम-झिम करके अवनी-
तल पर पानी बरसाना।

(२)

सिमिट - सिमिटकर एक
सरोवर में जल का जा भरजाना।
मंद पवन के झोकों से
लहरों का उसपर लहराना।

(३)

कज-कली का झाँक झाँक
जल के बाहर भीतर आना।
किसी व्याकुल को देख न बाहर
सहसा सिर ऊपर लाना।

(४)

लोक-लाज के कारण मुँह पर
डाल हरा घूँघट आना।
चपल तरंगों की संगति से
पर उच्छृंखल बन जाना।

(५)

घूँघट हटा देख सर दर्पण
में मुख अपना मुस्काना।
सुख देने को उमग अधरों
तक अपना कर फैलाना।

-

(६)

मंद समीरों का आ-आकर
मीठे धक्के दे जाना।
विहँसित होना कंज कली का
फूली - फूली न समाना।

(७)

करने को रस पान कली का
तब फिर मधुकर का आना।
छूते ही रस की मदिरा
उसका मतवाला हो जाना।

(८)

दिन भर मँडरा-मंडरा रस
पीना, पी-पी रस मँडराना।
अब हो जाना थकित शांत हो
कली अङ्क में सो जाना।

(९)

आँख ऊपरी मुँद जाना
भावना-नयन का खुल जाना।
स्वप्न देव का उसपर
स्वप्नों का बुनना ताना-बाना।

(१०)

सकल विश्व का पिघल पिघलकर
एक सरोवर बन जाना!
जग का सब सौंदर्य सिमटकर
कली रूप उसपर आना!

(११)

सब कवियों के मन का मिलकर
एक सुमधुकर हो जाना!
इस सर-कलिका की सुषमा का
गुन-गुन करके गुण गाना!

(१२)

मधुकर का यह गान श्रवण कर
बार - बार पुलकित होना ।
तन की सुधि रस से खोई थी
मन की सुध स्वर से खोना ।

(१३)

संध्या का होना रवि का
अस्ताचल को जा छिप जाना ।
कमल दलों को सकुचित करने
वाली रजनी का आना ।

(१४)

कोमल कमल दलों में दबना
मधुकर का कोमल-तम तन ।
दुसह वेदना सह उसका
करना समाप्त प्यारा जीवन ।

(१५)

सुखमय दृश्य दिखाकर उसका
अंत दुखमय दिखलाना ।
मधुकर के जीवन हरने का
सब सामान किया जाना !

(१६)

इसी लिए सौंदर्य देखकर
शंका यह उठती तत्काल—
कहीं फँसाने का तो मेरे
नहीं बिछाया जाता जाल ?

(१७)

ऐसी शंकाओं में फँसता
है क्यों ? बतला मानव मंद !
हर सुन्दरता में तुमको
अनुभव करना था परमानंद ।

(१८)

सुख-दुख क्या है ? हृदय-भावना
जिसने है जैसा माना ।
मधुकर ने अपने मरने को
था अनत सुखमय जाना !

(१५)

सुखमय दृश्य दिखाकर उसका
अंत दुःखमय दिखलाना।
मधुकर के जीवन हरने का
सब सामान किया जाना!

(१६)

इसी लिए सौंदय देखकर
शंका यह उठ्ठी तत्काल—
कहीं फँसाने का तो मेरे
नहीं बिछाया जाता जाल!

(१७)

ऐसी शंकाओं में फँसता
है क्यों? बतला, मानव मंद!
हर सुंदरता में तुमको
अनुभव करना था परमानंद।

(१८)

सुख-दुख क्या है ? हृदय-भावना
जिसने है जैसा माना ।
मधुकर ने अपने मरने को
था अनंत सुखमय जाना !

दुख में

(१)

"पड़ी दुखों की तुम पर मार !
दु खों में सुख भरा जान तू
रो-रोकर मुख न कर म्लान तू,
हँस, हँस हलका हो जाएगा तेरे दुख का भार।

(२)

निज बल पर जिनको अभिमान
संकट में साहस दिखलाते
दु खों को हैं दूर हटाते
दुख पड़ने पर जो हँसते हैं वही वीर-बलवान" ।

(३)

"मिले मुझे दुख लाखों बार,
पर, दुख में सुख सार समाया—
व्यंग, समझ मैं कभी न पाया।
सुख में हँसूँ, दुखों में रोऊँ—सीधा-सा व्यवहार।

(४)

कोमल से कोमल भी शूल
जब-जब है तन मेरे गड़ता,
बच्चों-सा मैं हूँ रो पड़ता;
काँटों को मैं कभी न अब तक समझ सका हूँ फूल।

(५)

एक नियम जीवन में पाल
रहा सदा से हूँ मैं अविचल,
कोई कहे बली या निर्बल,
उन्हें चुभा रहने देता हूँ, देता नहीं निकाल!"

दुखों का स्वागत

(१)

नदियाँ नीर भरें जलनिधि में
जो जल राशि अथाए।
शुष्क, जल रहित मरुस्थली को
दिनकर और तपाए

(२)

हृष्ट पुष्ट नित स्वस्थ रहे, कृश
क्षीण रुग्न हो जाए,
लक्ष्मी के मंदिर में स्वागत
धनी-महाजन पाए।

(३)

अंधकार अंधों को मिलता,
उसे नयन जो पाए,
ज्योति मिले, यह नियम जगत का
सम समान को धाए।

(४)

प्यार पास जाए प्यारों के,
सुख, सुखियों पर छाए,
आशिष आशिष-वानों पर, मुझ
दुखिया पर दुख आए!

आदर्श प्रेम

(१)

प्यार किसी को करना लेकिन—
कहकर उसे बताना क्या !
अपने को अर्पण करना पर—
औरों को अपनाना क्या !

(२)

गुण का ग्राहक बनना लेकिन—
गाकर उसे सुनाना क्या !
मन के कल्पित भावों से
औरों को भ्रम में लाना क्या !

(३)

ले लेना सुगंध सुमनों की,
तोड़ उन्हे मुरझाना क्या ?
प्रेम-हार पहनाना, लेकिन—
प्रेम पाश फैलाना क्या ?

(४)

त्याग—अंक में पलें प्रेम-शिशु
उनमें स्वार्थ बताना क्या ?
देकर हृदय हृदय पाने की
आशा व्यर्थ लगाना क्या ?

तुमसे

(१)

नहीं चाहता तुलसी दल बन
शीश तुम्हारे चढ़ पाऊँ,
नहीं, हार की कलियाँ बनकर
गले तुम्हारे पड़ जाऊँ।

(२)

नहीं, भुजाओं में रख तुमको
इन हाथों को करूँ पवित्र,
नहीं, हृदय के अन्दर बंदी
कर के रक्खूँ तुम्हारा चित्र।

(३)

नहीं चाहता दिखलाने को
तव भक्तों का वेश धरूँ,
नहीं, सखा बन सदा तुम्हारे
दाएँ-बाएँ फिरा करूँ ।

(४)

इच्छा केवल-रजकण में मिल
तव मंदिर के निकट पड़ूँ,
आते - जाते कभी तुम्हारे
श्री-चरणों से लिपट पड़ूँ ।

मधुर स्मृति

(१)

याद मुझे है वह दिन पहले
जिस दिन तुमको प्यार किया
तेरा स्वागत करने को जब
खोल हृदय का द्वार दिया।

(२)

मन मंदिर में तुझे बिठाकर
तेरा जब सत्कार किया,
झुक झुक तेरे चरणों का जब
चुंबन बारंबार किया।

(३)

स्नेहमयी वह दृष्टि प्रथम ही
थी जिसने तुझको देखा,
याद नहीं है मुझे, तुझे
देखा पहले या प्यार किया !

(४)

हर्षित होकर क्यों न सराहूँ
बार-बार उस दिन के भाग,
जिस दिन तूने प्रेम हमारा
खुले हृदय स्वीकार किया !
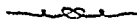
दुखिया का प्यार

(१)

"प्रेम का यह अनुपम व्यवहार !

पास न मेरे हैं वे आते

मुझे न अपने पास बुलाते,

दूर-दूर से कहते हैं, करता हूँ तुझको प्यार !!"

× × × × × ×

(२)

आपदा के ऐसे आगार—

जहाँ किसी का छू हम देते,

घेर उसे दुख संकट लेते !

मिलकर तुमसे क्यों तुमपर भी डालूँ दुख का भार !

(३)

विरह के दुख तो नहीं, हज़ार
सहा करूँ यदि जीवन भर मैं,
तुझे न दुखित बनाऊँ पर मैं,
'तू है सुखी'—यही तो मेरे जीवन का आधार।

(४)

प्रेम का ही तोड़ूँगा तार—
(चाहे मृत्यु भले ही आए)
ज्ञात मुझे यदि यह हो जाए—
दुखी बना सकता है तुझको इस दुखिया का प्यार" !
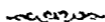
कलियों से

(१)

अहे ! मैंने कलियों के साथ,

जब मेरा चंचल बचपन था,
महा निर्दयी मेरा मन था,
अत्याचार अनेक किए थे,
कलियों को दुख दीघ दिए थे,
तोड़ इन्हें बागों से लाता,
छेद-छेद कर हार बनाता !
क्रूर काम यह कैसे करता।
सोच इसे हूँ आहें भरता।

कलिया ! तुमसे क्षमा माँगते ये अपराधी हाथ।

× × ×

(२)

अहे ! वह मेरे प्रति उपकार !

कुछ दिन में कुम्हला ही जाती,
गिरकर भूमि-समाधि बनाती।
कौन जानता मेरा खिलना?
कौन, नाज़ से डुलना-हिलना?
कौन गोद में मुझको लेता?
कौन प्रेम का परिचय देता?
मुझे तोड़ की बड़ी भलाई,
काम किसी के तो कुछ आई;
बनी रही दो-चार घड़ी तो किसी गले का हार।

× × ×

(३)

अहे ! वह क्षणिक प्रेम का जोश !

सरस-सुगन्धित थी तू जब तक,
बनी स्नेह-भाजन थी तब तक।

जहाँ तनिक सी तू मुरझाई,
फेंक दी गई, दूर हटाई।
इसी प्रेम से क्या तेरा हो जाता है परितोष?

(४)

बदलता पल पल पर संसार,
हृदय विश्व के साथ बदलता
प्रेम कहाँ फिर लहे अटलता?
इससे केवल यही सोचकर,
लेती हूँ सन्तोष हृदय भर—
मुझको भी था किया किसी ने कभी हृदय से प्यार!

विरह-विषाद

(१)

चन्द्र ! आते ही मृदुल प्रभात—
भू का रवि जब अञ्चल धरता,
किरण, कुसुम, कलरव से भरता
उसे, बना लेते क्यों अपना मलिन, हीन-द्युति गात !

(२)

निशा रानी का विरह-विषाद !
शोक प्रकट क्यों इतना करते ?
छिपते जाते आहें भरते।
मिलन प्रणयिनी से तो निश्चित एक दिवस के बाद !

(३)

नहीं कुछ सुनते मेरी बात !

देव ! दुख विरह यथपि तुम्हें जब
इतना होता, बतलाओ अब
धरें धैर्य्य मानव हम क्यों तब,
हो वियोग जिनका मिलना फिर दूर ! निकट ! अज्ञात !

(२)

आ गया हाय ! समय अब कौन !
हैं सजीव जो मधुर बोलतीं,
बात-बात में अमृत घोलतीं,
सहज हृदय के भाव खोलतीं
वे भी क्या भावना भक्ति से हो जाएँगी मौन !

(३)

नयन में स्नेह भरा, मत मोड़
आँख, कर प्रकटित अपना भाव,
भयंकर मुझसे अधिक दुराव !
जानती अकथित प्रेम प्रभाव !
प्रबल धार यह बाहर आती बाँध हृदय का तोड़ !

उपहार

(१)

जब लेकरके कुछ उपहार
मैं तेरे सम्मुख आता हूँ,
मन में कितना शर्माता हूँ!
अरे! कहाँ ये तुच्छ वस्तुएँ! कहाँ हमारा प्यार!

(२)

जग के वैभव का भंडार
एक स्वप्न में मैंने पाया,
चरणों में ला उसे चढ़ाया
तेरे, पर क्या हो पाया संतुष्ट हमारा प्यार!

(३)

जाग्रत में मैं निधन-दीन।
क्या देने को तुमको लाऊँ
जिससे अपना प्यार दिखाऊँ ?
इसी सोच में हृदय हमारा निशि दिन चिंता-लीन।

(४)

इससे देखूँ एक बचाव—
अपना सब अस्तित्व मिटाऊँ,
तुममें ही बिलकुल मिल जाऊँ,
रहे न हृदय जहाँ हा 'देने' 'दिखलाने' का भाव !

मेरा धर्म्म

(१)

धर्म्म हमारा पूछो प्राण ?—
किसे समझता मैं भगवान ?
किसका उठकर करता ध्यान ?
किसे हृदय में अपने देता सब से उच्चस्थान ?

(२)

धर्म्म हमारा पूछो प्राण ?—
किसे समझता प्राणाधार ?
किसकी करता भक्ति अपार ?
समझूँ अदर चमक रही है किसकी ज्योति महान ?
धर्म्म हमारा पूछो प्राण ?—

(३)

धर्म हमारा पूछा प्राय !—
ईश्वर को मैं नहीं जानता,
उसकी सत्ता नहीं मानता
जिसे न देखा जाना कैसे उसको लेता मान ?

(४)

जगती में मैं अब तक प्राय !
केवल एक प्रेम पहचानूँ,
उसे हृदय का स्वामी मानूँ,
सब कहते भगवान प्रम है—प्रेम हमें भगवान !

(५)

धर्म हमारा पूछो प्राय !—
कौन शक्ति मेरे तन देता !
कौन तरी जीवन की खेता !
कौन हमारा जीव !—मान कर बनती हो अनजान !

(६)

नयन करो मत नीचे प्राण !
शक्ति तुम्हीं हो मुझको देती,
तुम्हीं तरी जीवन की खेती,
तुम्हीं जीव हो, प्राण ! हमारी—और तुम्हीं भगवान !!

(७)

"यह कैसे ?"—तुम पूछो प्राण !
ईश-जीव में भेद नहीं है,
जहाँ जीव है ईश वहीं है,
'प्रेम' 'प्राण' तुम दोनों मेरी—शंकर वचन प्रमाण—

(८)

धर्म्म हमारा पूछो प्राण !
किसको रक्षक अपना कहता,
सदा आसरे जिसके रहता,
करा सरलता से लेने को ईश्वर से पहचान ?

(९)

सादर न तेरा प्राण !
मुझे प्रेम का पाठ पढ़ाया,
मेरे ईश्वर तक पहुँचाया,
इससे कहूँ उसे मैं अपना ईश्वर दूत सुजान ।

(१०)

धम्म हमारा पूछो प्राण !
धम्म ग्रंथ है कौन हमारा ?
शंकाओं में कौन सहारा ?
ज्ञान बढ़ाऊँ किससे ?—मानूँ किसके वाक्य प्रमाण ?

(११)

तेरे मालेपन में प्राण !
मेरा ज्ञान का सारा सार,
सदा उसी का लूँ आधार,
करता उसका पाठ—यही है मेरा वेद—कुरान ।

(१२)

धर्म हमारा पूछो प्राण ?—
मेरा कौन पवित्र-स्थान,
शुचिता मुझको करे प्रदान,
जिसकी ओर तीर्थ-यात्री बन करता मैं प्रस्थान ?

(१३)

हर्ष हमारा मक्का प्राण !
हम-तुम ने मिल उसे बनाया,
प्रेम वहाँ पर बसने आया,
नहीं वासना, पाप वहाँ पर पाते वासस्थान।

(१४)

धर्म हमारा पूछो प्राण ?
स्वर्ग कहाँ मैं अपना मानूँ ?
प्रेम ! न इसका उत्तर जानूँ,
परे भूमि से लोकों का है कुछ भी मुझे न ज्ञान।

(१५)

अजर अमर के कभी विचार

नहीं हृदय में मेरे आए।

पल भर का जीवन कट जाए,

इसी तरह बस तुझे गाद में लेकर करते प्यार!

संकोच

(१)

प्रियतम द्वार खड़ी हूँ मौन।
यहाँ भला कब सोचा आना !
मेरा ! उनका ! दर्शन पाना !
खींच मुझे इतनी दूरी से लाया बरबस कौन !

(२)

बंद निर्दयी क्यों हैं द्वार !
'मेरे प्यारे' ! 'प्रियतम' ! 'प्रियवर' !
उन्हें पुकारूँ क्या मैं कहकर !
लेकर नाम ! पूछती अपने मन से बारबार !

(२५)

अजर, अमर के कभी विचार
नहीं हृदय में मेरे आए।
पल भर का जीवन कट जाए,
इसी तरह बस तुझे गोद में लेकर करते प्यार!

प्रेम का आरंभ

(१)

प्रियतम ! दिवस तुम्हें वह याद ?

नभ में निकल तरैयाँ-तारे

छिटक रहे थे प्यारे-प्यारे,

हरी डालियों का था अचल,

पवन हो रहा था कुछ चंचल,

कलियों पर झुक रहे कुसुम थे,

वृक्ष तले बैठे हम तुम थे... .... !

प्रथम प्रेम का जिस दिन तुम पर छाया था उन्माद ?

× × × ×

(३)

मौन खड़ी, खटकाऊँ द्वार—
अरे ! हाथ ख़ाली ही आई !
देने को उपहार न लाई !
अरी ! करेगी किससे प्रियतम की पूजा-सत्कार

(४)

क्षमा कपट का हो व्यवहार—
यहीं कहीं बैठूँगी छिपकर
आएँगे देखूँगी पल भर,
बस लौटूँगी उस पल का हृत्पट पर चित्र उतार।

(२)

प्रेम ! प्रेम ! उस दिन की याद
नहीं चाहता मुझे दिलाओ,
भूल उसे अब तुम भी जाओ।
वह दिन उनकी याद दिलाता,
जब न तुम्हारा मुझसे नाता।
भुला दिए मैंने दिन सारे,
बिना प्रेम अब रहा तुम्हारे।
तब की तो कल्पना हृदय में मेरे भरे विषाद !

(३)

यद्यपि वह दिन था सुकुमार,
पर न मुझे आकर्षित करता,
अब, न भावनाओं से भरता।
गिना दिनों से जाने हारा,
नहीं प्रेम अब रहा हमारा।
आदि, अनंत प्रेम का कैसा !
मुझको तो अब लगता ऐसा—
तुम सदा से मैं करता था इसी तरह से प्यार !

आत्म-संदेह

(१)

प्राण! बहुत मै तुझसे दूर!

कभी हृदय से बसने वाली

तुझे समझता मूर्ति निराली।

हाय! सुदृढ विश्वास आज होता वह मुझसे दूर!

(२)

तुझपर आते कष्ट-कलाप,

पर न उन्हें मैं बिल्कुल जानूँ।

हृदयासीन तुझे पर मानूँ!

हो सकता है इससे भी क्या बढकर व्यर्थ प्रलाप?

(३)

इच्छा तो थी मेरी, प्राण!
काँटे से भी कष्ट तुझे हो,
तत्क्षण अनुभव वही मुझे हो,
बड़े-बड़े तेरे दुखों का भी पर मुझे न ज्ञान!

(४)

इच्छा थी तेरा दुख-भार
मैं अपने ही ऊपर ले लूँ
सुख अपने सब तुमको दे दूँ
पर तेरा दुख अल्प हटाने में भी हूँ लाचार।

(५)

कहता तुमसे प्रेम अमान।
किंतु देख उसकी निबलता
हृदय हमारा भरे विकलता,
और कभी संदेह हमारे मन में उठे महान।

× × × ×

(६)

सुने प्रेमियों के आख्यान—
घाव एक तन में लग जाता
रक्त-धार दूसरा बहाता—
सच थे वे, थे या कवियों के बस काल्पनिक उड़ान ?

(७)

मौत प्रेम से जाती हार;
किसी एक को लेने आती,
उद्यत उसका प्रेमी पाती,
उसके बदले चलने को—चुप हो करती स्वीकार।

(८)

सत्य कथाओं के आधार
यदि थे वे तो क्यों उनका सा
प्रेम नहीं मैं हूँ सकता पा ?
चला गया क्या साथ उन्हीं के जग से सच्चा प्यार ?

(९)

था मैं इतना मूर्ख गँवार,
नहीं समझ जो अब तक पाया
छली हृदय की छल मय माया
ढोंग प्यार का करता था, कहता था—करता प्यार।

× × ×

(१०)

मुझको है संदेह अपार
प्रेम नहीं क्या तुम थे करते ?
केवल उसका दम थे भरते ?
हृदय ! सशंक नयन से मैं अब देखूँ तेरा प्यार।

(११)

अब तक थे क्या करते स्वाँग
हृदय ! प्रेम का ? क्यों न बताते ?
भ्रम में क्यों उसको लाते ?
भाव प्रेम की तुमसे आकर कौन रही थी माँग।

(१२)

हृदय हमारी सुन फटकार
फूट-फूट कर हो तुम रोते,
कहने को तो हो कुछ होते,
पर क्यों रुक जाते ? मैं सुनने को तो हूँ तैयार ।

× × ×

(१३)

निर्बल प्रेम—करूँ स्वीकार,
पर मेरा अपराध बताते
जो, या मुझ पर दोष लगाते
जिसका, उसके कारण सारा अपराधी संसार ।

(१४)

नवल-सृष्टि के प्रथम प्रभात
प्रकट हुआ शिशु मानव जब था,
गोद सुधा की लेटा तब था,
पावन-प्रेम-दुग्ध-सिंचित था उसका कोमल गात ।

(२७)

योग्य प्रेम के वासस्थान
भला कहाँ मिलता इस भू पर !
इसलिए वह इसे छोड़कर
चला गया निज मधुर स्मृति का हमको छोड़ निशान !

(२८)

मुझ प्रेम से अब भी प्यार।
मधुर वस्तु होता प्यारी, पर
मधुर-स्मृति होती है प्रियतर
विरले प्रमी अब लेते हैं उसका ही आधार।

(२९)

स्वप्न प्रेम के जो सुकुमार—
उन्हें देखना अब तुम छोड़ो,
पूर्व-भावना निद्रा तोड़ो।
कहाँ लौट सकता है जग में पहले-का-सा प्यार !

(३०)

अधःपतन मानव का देख
शंका ऐसा भय उपजाए—
कहीं न दिन ऐसा भी आए,
हृत्पट से जब मिट जाए स्नेह-स्मृति की भी रेख!

जन्म दिवस

आ याद दिलाएँ जन्म दिवस की
हप अनेक, अपार तुम्हें।
हो, और, मुबारक जन्म दिवस
प्यारी कविते, सौ बार तुम्हें।
हम दीन पड़े, हम दूर पड़े,
क्या भेंट करें उपहार तुम्हें!
संतोष इसी से कर लेना
सौ बार हमारा प्यार तुम्हें।

बच्चन की

अन्य प्रकाशित रचनाओं का

विवरण

सुषमा निकुंज, इलाहाबाद

मधु-कलश

यह 'निशा निमंत्रण', बच्चन की नवीनतम कृति, के पूर्व लिखित मधुकलश कवि की वासना, सुषमा, कवि की निराशा, पी हरियाली कवि का गीत, पथभ्रष्ट कवि का उपहास, माँझी, लहरों का निमंत्रण और मेघदूत के प्रति, शीर्षक कविताओं का संग्रह है।

देखिए एक सम्मति

यह बताने की ज़रूरत नहीं कि कवि हिंदी में एक नवीन धारा के प्रवर्तक हैं और यद्यपि उमर ख़ैयाम से कवि प्रभावित अवश्य हुए हैं, पर उनकी अपनी विशेषता भी है और उनका अपना रंग भी है, जो एक दम निराला है। बच्चन जी की कविताएँ पढ़ते समय हमें इस बात का अनुभव होता है कि हिन्दी का यह कवि मानवता का गीत गाता है और अपनी मूल्यवान मस्ती में बेधड़क उन सत्यों को कहने का साहस दिखाता है, जिन्हें छूने का साहस कितने ही कलाकार नहीं कर सकते, यद्यपि वे कुछ ऐसे सत्य हैं जो इस काल के किसी भी कलाकार के लिए अत्यंत आवश्यक हैं और हम ऊपर यह जो कुछ कह रहे हैं 'मधुकलश' की कविताएँ उसकी साक्षी हैं।

—विश्वमित्र, नवम्बर '३७

पृष्ठ संख्या ११२, कपड़े की जिल्द मूल्य १)

शीघ्र अपनी प्रति मँगाइए। थोड़ी सी प्रतियाँ शेष हैं।

सुषमा-निकुंज, इलाहाबाद

मधुशाला

[तीसरा संस्करण]

[मधुशाला पर लिखित रुबाइयों का संग्रह]

पृ० सं० १००—कपड़े की जिल्द मूल्य १)

मधुशाला में १३५ रुबाइयाँ हैं। हाला, प्याला, मधुबाला और मधुशाला के केवल चार प्रतीकों और तुकों को लेकर बच्चन ने अपने कितने भावों और विचारों को इन रुबाइयों में भर दिया है इसे वे ही जानते हैं जिन्होंने कभी मधुशाला उनके मुँह से सुनी या स्वयं पढ़ी है। आधुनिक खड़ी बोली कविता की कोई भी पुस्तक मधुशाला के समान लोकप्रिय नहीं हो सकी, इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है।

देखिए दो सम्मतियाँ

हंस—हिंदी में मधुशाला बिल्कुल नई चीज़ है। यह श्रेय बच्चन ही को है कि उन्होंने हिंदी कविता में मधुशाला भी सजा दी।

विश्वमित्र—'मधुशाला' सचमुच ही हिंदी में अपने ढंग की एक ही किताब है।

तीसरा संस्करण नए ठाट-बाट से छपकर तैयार है। अपनी प्रति शीघ्र ही मँगा लीजिए।

सुषमा-निकुंज, इलाहाबाद